Ll.b.
2semester
Legal history.

मिन्टो-मार्ले सुधार,[1] 1909
(MINTO-MORLEY REFORMS, 1909)

सन् 1892 के विधायी संशोधन भारतीय जनता को संतुष्ट न कर सके अत: भारतीयों में ब्रिटिश सरकार के प्रति रोष बढ़ता गया। सन् 1892 के अधीन पुनर्गठित परिषदों की स्थिति संतोषजनक नहीं थी क्योंकि ब्रिटिश सरकार की शक्ति के सामने सदस्यों की कोई आवाज नहीं थी।

सन् 1892 से 1909 तक का काल भारत में राजनीतिक उथल-पुथल का युग माना जाता है। इस अवधि में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस दो खेमों में बँट गई जो गरम दल (extremists) तथा नरम दल (moderate) कहलाए। गरम दल के समर्थकों में बाल गंगाधर तिलक, अरविंद घोष, विपिनचंद्र पाल तथा लाला लाजपत राय प्रमुख थे जो भारतीय स्वायत्तता के लिए अंग्रेजों से सीधे टक्कर की नीति के पोषक थे। नरम दल का नेतृत्व गोपाल कृष्ण गोखले, महादेव रानडे, फिरोजशाह मेहता तथा महात्मा गाँधी के हाथों में था जो अंग्रेजों के प्रति अनुनय-विनय और शांतिपूर्ण आन्दोलन में विश्वास रखते थे। अंग्रेजों ने नरम दल तथा मुस्लिमों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाते हुए अपनी दमनकारी कार्यवाहियाँ जारी रखने की नीति अपनाई।

इसी बीच सन् 1899 में लार्ड कर्जन गवर्नर-जनरल नियुक्त होकर भारत आया। उसने अपने छ: वर्षों के शासन काल में प्रशासकीय सुधार के नाम पर नौकरशाही को बढ़ावा दिया तथा इंग्लैंड से अनेक अंग्रेज अधिकारियों को भारत में नियुक्त किया। परिणामस्वरूप सरकार का व्यय बढ़ गया और आर्थिक असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गई। सन् 1905 में उसने प्रशासनिक सुविधा की ओट में बंगाल का विभाजन किया जो बंगवासियों की राष्ट्रीय भावना पर सीधा प्रहार था। परिणामस्वरूप अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध बंगाल के निवासियों का रोष बढ़ गया।[2]

लार्ड कर्जन ने अनेक विभागों में विशेषज्ञों की नियुक्तियां कीं। जिनमें शिक्षा, कृषि, सफाई, सिंचाई, खानें, पुरातत्व विभाग प्रमुख थे। शिक्षा विभाग में महानिदेशक, कृषि विभाग में महा-निरीक्षक, चीफ-इन्सपेक्टर माइन्स, आदि की नियुक्तियों के परिणामस्वरूप सरकार का आर्थिक बोझ बढ़ गया। दिखाने के लिये ये सब जनता के कल्याण के लिये किये गये थे, लेकिन इनके पीछे ब्रिटिश स्वार्थ यह था कि अपने लोगों को यथासंभव नियुक्तियां देकर भारत में ब्रिटिश शासन को दृढ़ करना।

लार्ड कर्जन (Lord Curzon) ने अपने शासनकाल (1899-1905) में सन् 1882 से लागू की गई वित्तीय-अवक्रमण (Financial devolution) की नीति जारी रखी तथा इसमें कुछ सुधार करते हुए सन् 1904 में अर्ध-स्थायी बंदोबस्त (Quasi-Permanent Settlement Scheme of 1904) योजना लागू की। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रांतों को देश की सकल राजस्व आय में एक निश्चित निर्धारित हिस्सा आवंटित किया गया और उसमें बढ़ौती तभी संभव यदि उक्त राशि प्रांत-विशेष की आवश्यकताओं को देखते हुए पूर्णत: अनुपातहीन प्रतीत न हो। तथापि प्रांतों की अतिरिक्त राजस्व आय को केन्द्रीय ब्रिटिश सरकार में जमा करने की नीति त्याग दी गयी।[3]

इसी अवधि में ब्रिटिश सरकार ने कुछ ऐसे कानून पारित किये जिनका भारतीय जनता ने कड़ा विरोध किया। इनमें सन् 1891 का विवाह के लिए न्यूनतम आयु 10 वर्ष से बढ़ाकर 12 वर्ष किये जाने संबंधी

---

1. जॉन मार्ले (1838-1923) सन् 1905 से 1910 तक भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के पद पर थे तथा लार्ड मिन्टो 1905 से 1910 की अवधि में भारत के गवर्नर-जनरल तथा वायसराय रहे।
2. जी० एन० सिंह-भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास (2 रा संस्क०) पृ० 145.
3. भारतीय सांविधानिक सुधार पर रिपोर्ट (1918) पृ० 70.

कानून,[1] कलकत्ता कार्पोरेशन अधिनियम,[2] 1899 तथा शासकीय गुप्त-बात अधिनियम[3] 1904 विशेष घातक थे।

भारतीय सैन्य-व्यवस्था में तत्कालीन सेनाध्यक्ष (Commander-in-chief) लार्ड किचनर द्वारा सन् 1902-09 के बीच किये गए परिवर्तनों के कारण भी भारतीय सेना में ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष बढ़ गया। सैनिक सुधार योजना किचनर द्वारा 1903 में तैयार की गई थी परन्तु उसे सन् 1908 तक पूरी तरह लागू नहीं किया जा सका। मद्रास और बंबई के सेनाध्यक्ष के पदों को सन् 1893 के सेना अधिनियम (Armies Act, 1893) द्वारा समाप्त कर दिया गया था तथा ब्रिटिश भारत की संपूर्ण सेना कलकत्ता के सेनाध्यक्ष के अधीन कर दी गई थी। सन् 1908 में सेना का मुख्यालय दो जगह था, दक्षिणी क्षेत्र का मुख्यालय पूना में तथा उत्तरी कमान का मुख्यालय मुरी में था। इसी प्रकार सैनिक प्रशिक्षण के लिए क्वेटा (Quetta) में एक प्रशिक्षण विद्यालय खोला गया। इसके परिणामस्वरूप सरकार का सेना पर खर्च बहुत बढ़ गया। भारतीय सैनिक तथा ब्रिटिश सैनिकों में भेदभाव की नीति के कारण भारतीयों की ब्रिटिश सरकार के प्रति आस्था कम हो गई।

सन् 1899-1900 का भीषण अकाल तथा इसके कारण फैली महामारी के कारण लोगों के कष्ट बढ़ गए तथा इस दैवी विपत्ति में ब्रिटिश सरकार की निष्क्रियता के कारण भारतीयों में उनके प्रति अविश्वास बढ़ता गया और अंग्रेजी सरकार विरोधी भावनाओं को बल मिला।

ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जन आक्रोश के लिये कतिपय अन्य कारण अंग्रेज शासकों की भारतीयों के प्रति दमनकारी नीति तथा हीन भावना, आर्थिक मंदी भीषण महामारी एवं अकाल जैसी प्राकृतिक आपदाएं, ब्रिटेन का लाभ पहुंचाने हेतु भारतीय करंसी का विनिमय आदि भी थे। ब्रिटिशों द्वारा भारतीयों के प्रति कारित अपराधों के लिये उन्हें नाम मात्र का दंड देकर छोड़ दिया जाता था या उनकी दोषमुक्ति कर दी जाती थी। इस कारण भारतीयों का ब्रिटिश न्याय व्यवस्था से विश्वास उठ गया था।[4]

इन आन्तरिक घटनाओं के अलावा कुछ बाह्य घटनाओं ने भी भारतीय जन-चेतना को अधिक सक्रिय बना दिया। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ अपमानजनक व्यवहार, विशेषतः एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट[5] 1907 ने भारतीयों की भावनाओं को झकझोर दिया और उन्होंने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध अपनी गतिविधियाँ तेज कर दीं। लार्ड कर्जन द्वारा अफगानिस्तान तथा तिब्बत के सीमावर्ती प्रदेशों के प्रति अपनाई गई नीति भी भारतीय नेताओं के रोष का कारण थी। ब्रिटिश सरकार ने विस्तारवादी नीति से प्रेरित होकर चीन और दक्षिणी-अफ्रीका को भारतीय सैन्य टुकड़ियाँ भेजीं जिसका भारतीयों ने विरोध किया। इसी प्रकार सन् 1896 में एबीसीनिया द्वारा इटली तथा सन् 1905 में जापान द्वारा रूस पर साहसिक विजय से भारतीय क्रांतिकारियों को प्रेरणा मिली। लोबट फ्रेजर के अनुसार भारतीयों में वास्तविक राष्ट्रीय चेतना जापान की मंचूरिया पर विजय के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न हुई और उन्हें यह आभास हुआ कि असीम देश-प्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावना ही देश को ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों से छुटकारा दिला सकती है। मिश्र देश, फारस तथा तुर्किस्तान के स्वतंत्रता आन्दोलनों से प्रेरणा लेते हुए भारतीयों में राष्ट्र-प्रेम की भावना प्रबल हो उठी और वे अंग्रेजों की गुलामी से छुटकारा प्राप्त करने की योजना बनाने लगे।

लार्ड कर्जन ने सन् 1905 में गवर्नर जनरल पद से त्यागपत्र ब्रिटिश सम्राट को सौंप दिया क्योंकि उसकी कौंसिल में कमांडर-इन-चीफ की प्रास्थिति तथा शासन-व्यवस्था में उसकी भूमिका पर सांविधानिक विवाद उत्पन्न हो गये। लार्ड किचनर (Lord Kitcner) जो उस समय भारत में कमांडर-इन-चीफ के पद पर कार्यरत थे यह चाहते थे कि युद्ध-मंत्री (War Minister) का पद भी उन्हें ही दिया जाए परन्तु लार्ड कर्जन इसके

---

1. Age of Consent Act, 1891.
2. इस अधिनियम द्वारा कलकत्ता कार्पोरेशन की सदस्य संख्या 75 से घटाकर 50 कर दी गई ताकि उसमें अंग्रेज सदस्यों का बहुमत बना रहे। इसी प्रकार सन् 1904 में विश्वविद्यालय अधिनियम पारित कर उसकी सीनेट। सिंडीकेट आदि में अंग्रेजों की बहुलता बनाए रखने का प्रयास किया गया था।
3. Official Secrets Act, 1904.
4. जी० पी० सिंह ने अपनी पुस्तक (Landmarks in Constitutional & National Development (1600-1919) Vol I (2nd Ed) पृ० 149 में ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है।
5. इस अधिनियम के अनुसार भारतीयों को रजिस्ट्रेशन के लिए अँगूठा लगाना पड़ता था चाहे वे पढ़े-लिखे क्यों न हों।

विरुद्ध थे। ब्रिटिश सम्राट किचनर को उपकृत करना चाहती थी जो कंपनी को स्वीकार्य नहीं था। तथापि राज्य सचिव ने दोनों के मध्य समझौते का प्रयास करते हुये यह सुझाव दिया था कि गवर्नर-जनरल की कौंसिल में कमांडर-इन-चीफ के अतिरिक्त एक आपूर्ति-मंत्री (Minister of Supplyer) की नियुक्ति भी की जाए जो सैनिक मामलों में सरकार के परामर्शदाता के रूप में कार्य करे तथा सेना की आपूर्ति व्यवस्था भी संभाले। इस नये पद हेतु जनरल बारो (General Barrow) का नाम सुझाया गया परन्तु राज्य सचिव ने उसे नामंजूर कर बारो से अधिक योग्य एवं अनुभवी को नियुक्त किये जाने की पहल की। इससे अप्रसन्न होकर लार्ड कर्जन ने दिनांक अगस्त 12, 1905 को तार द्वारा अपना इस्तीफा ब्रिटिश सम्राट को भेज दिया और उनके स्थान पर लार्ड मिन्टो भारत के गवर्नर जनरल नियुक्त किये गये।

मिन्टो-मार्ले सुधारों की रचनात्मक पृष्ठभूमि सन् 1906 से प्रारंभ होती है जब राष्ट्रीय कांग्रेस के नरमदल के नेता गोपाल कृष्ण गोखले ने गवर्नर-जनरल लार्ड मिन्टो से अपील की कि शिक्षित वर्ग को शान्त करने का एकमात्र उपाय यह है कि इन वर्गों को स्वराज्य की सरकार चलाने में सहयोग देने का अवसर प्रदान किया जाए।[1] श्री गोखले ने इंग्लैण्ड जाकर स्वयं भारत-सचिव मार्ले से भेंट की तथा उन्हें भारतीयों की स्थिति से अवगत कराया। इस पर मार्ले ने गवर्नर-जनरल को लिखा कि भारतीय परिस्थितियों में शीघ्रता से हो रहे क्रांतिकारी परिवर्तनों की अनदेखी करना महान भूल होगी इसलिए भारतीय शासन में तत्काल कुछ सांविधानिक सुधार करना उचित होगा। मिन्टो ने मार्ले के विचार से सहमति व्यक्त करते हुए पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया लेकिन भारत सचिव (मार्ले) चाहते थे कि इस दिशा में शुरुआत गवर्नर-जनरल ही करें। फलतः सन् 1906 में लार्ड मिन्टो ने अपनी कार्यकारिणी परिषद् के चार सदस्यों की एक समिति गठित की जिसके अध्यक्ष ऐरण्डाल थे। समिति को निम्नलिखित मुद्दों पर अपनी राय देनी थी—

1. केन्द्रीय सर्वोच्च विधान-परिषद् तथा प्रांतीय विधान परिषदों में प्रतिनिधित्व में वृद्धि;
2. गवर्नर-जनरल की कार्यपालिका परिषद् में एक भारतीय सदस्य का समावेश;
3. बजट प्रस्तुत करने तथा उसमें संशोधन करने का अधिकार दिये जाने पर विचार; तथा
4. देशी रियासतों के राजाओं की एक परिषद् का गठन अथवा उन्हें सर्वोच्च विधान-परिषद् में प्रतिनिधित्व दिये जाने सम्बन्धी व्यवस्था।

उक्त समिति ने अपनी रिपोर्ट सन् 1906 में ही गवर्नर-जनरल को प्रेषित कर दी लेकिन सपरिषद् गवर्नर-जनरल का प्रतिवेदन मार्च 1907 तक भारत सचिव को प्राप्त नहीं हुआ। अतः उन्होंने भारत सरकार की संसदीय समिति द्वारा जाँच कराने की धमकी दी। अन्ततः 1907 के अन्त में भारत सरकार में सुधार सम्बन्धी प्रस्ताव भारत-सचिव को प्राप्त हुआ जिस पर भारत सचिव की परिषद् द्वारा विचार-विमर्श किया गया तथा भारतीय प्रांतीय सरकारों की राय जानने हेतु प्रसारित किया गया।

उल्लेखनीय है कि इसी बीच गवर्नर-जनरल मिन्टो भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता फैलाकर प्रस्तावित सुधारों में बाधा उत्पन्न करने में लगे हुए थे। सन् 1906 में भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हो चुकी थी। अंग्रेजी सरकार ने मुस्लिमों[2] से गुप्त चर्चा करके यह प्रचार करने की कोशिश की कि ये सुधार मुसलमानों के हितों के लिए हानिकारक होंगे। इसी अवधि में महा-महिम (हिज हाइनेस) आगा खां के नेतृत्व में विभिन्न प्रांतों के प्रभावशाली मुस्लिमों का एक शिष्ट-मंडल गवर्नर-जनरल मिन्टो से शिमला में मिला और अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमें दो माँगें रखी गईं थीं—प्रथम यह कि प्रस्तावित प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चुनाव में मुस्लिमों का प्रतिनिधित्व उनकी जनसंख्या पर आधारित न होकर उनके महत्व तथा साम्राज्य के लिए सेवा के अनुरूप रखा जाए तथा दूसरे, उन्हें पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों के द्वारा अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया जाए।[3] मिन्टो ने इसे सुवर्ण संधि समझ कर शिष्ट-मण्डल को आश्वासन दिया कि मुस्लिमों के हितों तथा अधिकारों पर उचित ध्यान दिया जाएगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है

---

1. बूचर-लार्ड मिन्टो पृ० 23.
2. अलीगढ़ कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल मि० आर्कबोल्ड ने प्रस्तावित सुधारों के विरुद्ध मुस्लिम सम्प्रदाय को उत्तेजित करने में सक्रिय भाग लिया।
3. जी० एन० सिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० 192.

कि मिन्टो ने भारत में 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाकर अगले कुछ वर्षों के लिए ब्रिटिश शासन को जारी रखने का मार्ग प्रशस्त किया। लार्ड मिन्टो की इस नीति का हिन्दू और मुसलमान राष्ट्रवादियों ने विरोध किया तथा इसे कुटिल राजनीतिक चाल निरूपित किया।[1]

जहां एक ओर भारतीय राजनीतिक पटल पर महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे वहीं दूसरी ओर ब्रिटेन के उदारवादी दल के नेता शासन में अनुशासन तथा प्रभावोत्पादकता के बजाय स्वतंत्रता और स्वायत्तता (freedom and autonomy) की मांग को प्राथमिकता दिये जाने के पक्षधर थे। इस दल के जॉन मार्ले जो अपने सुधारवादी विचारों के लिये लोकप्रिय थे, दिसंबर 1905 को भारत-सचिव के पद पर नियुक्त किये गये उनका निश्चित मत था कि भारत में उग्रवाद तथा ब्रिटिश-विरोधी को शांत करने के लिये कतिपय संविधानिक सुधार किया जाना तत्काल आवश्यक है। अत: उन्होंने इस मुद्दे पर तत्कालीन भारत स्थित गवर्नर जनरल तथा वॉयसराय (Governor General Viceroy) लार्ड मिण्टों से भारतीय सुधारों पर लम्बी चर्चा की।

समय की आवश्यकता तथा स्थिति की गंभीरता को देखते हुए लार्डमिंटों ने अपनी कार्यपालिक परिषद के सदस्य ए० टी० अरुण्डाल (A.T. Arundal) की अध्यक्षता में अगस्त 1906 को एक समिति नियुक्त की जिसे महत्वपूर्ण संविधानिक मुद्दों जैसे, केन्द्रीय विधान-परिषद के सदस्यों में वृद्धि, बजट पर बहस, संशोधन प्रेषित करने तथा गवर्नर-जनरल की कार्यपालिक परिषद में एक भारतीय सदस्य की नियुक्ति आदि पर अपने सुझाव देना था।

अरुण्डल समिति रिपोर्ट (अक्टूबर 1906)—अरुण्डल समिति ने अपनी रिपोर्ट अक्टूबर 1906 में गवर्नर जनरल को प्रस्तुत कर दी तथा इस पर गवर्नर-जनरल की परिषद में चर्चा के पश्चात् इसे मार्च 2007 में भारत-सचिव (जानमार्ले) को प्रेषित किया गया। मार्ले ने इस पर विचार कर इसे भारत सरकार को वापस भेज दिया ताकि इस पर स्थानीय प्रांतीय सरकारों की प्रतिक्रिया ज्ञात हो सके। इसमें लगभग एक वर्ष का समय लगा। अंतत: भारत सचिव ने प्रस्तावित परिवर्तनों का प्रारूप तैयार करके फरवरी 1909 को ब्रिटिश मंत्रिमंडल के अनुमोदन के लिये भेज दिया। इस पर आधारित इंडियन काउन्सिल्स एक्ट का विधेयक हाउस ऑफ लार्डस में प्रस्तुत किया जो ब्रिटिश संसद द्वारा मई 15, 1909 को इंडियन काउन्सिल्स एक्ट, 1909 के रूप में पारित कर दिया गया। तथापि यह अधिनियम जनवरी 1, 1910 से प्रभावी हुआ।

अपने पूर्ववर्ती अधिनियमों की भांति यह अधिनियम भी एक संशोधन अधिनियम था। इसे ब्रिटिश संसद में प्रस्तुत करते समय मार्ले ने जोर देकर कहा था कि इस अधिनियम का उद्देश्य भारत में संसदीय शासन व्यवस्था (प्रत्यक्षत: या परोक्षत:) लागू करने का कदापि नहीं है, यह केवल सन् 1861 के अधिनियम के अन्तर्गत लागू की गई प्रतिनिधिक शासन-व्यवस्था का विस्तार मात्र है।[2]

भारत सचिव लार्ड जॉन मार्ले ने जो भारत की स्वायत्तता के समर्थक थे, प्रस्तावित सांविधानिक सुधारों को अपनी परिषद् द्वारा अनुमोदित कर ब्रिटिश संसद में प्रस्तुत किया। यह विधेयक 24 फरवरी 1909 को ब्रिटिश संसद के पटल पर रखा गया जो दोनों सदनों द्वारा अनुमोदित होकर 25 मई 1909 को भारतीय परिषद् अधिनियम, 1909 (Indian Councils Act, 1909) के नाम से पारित हुआ।[3] इस अधिनियम द्वारा लागू किये गए सुधारों को मिंटो-मार्ले सुधार भी कहा जाता है।

भारतीय परिषद् अधिनियम, 1909 (Indian Councils' Act, 1909)

इस अधिनियम की मुख्य विशेषता यह थी कि इसके द्वारा विधान-परिषदों की सदस्य संख्या तथा उनकी शक्तियों में उल्लेखनीय वृद्धि कर दी गई। अधिनियम की धारा 1 के अधीन भारत सरकार विधान परिषदों सम्बन्धी विनियम बनाने के लिए अधिकृत की गई जिसका अनुमोदन भारत-सचिव द्वारा किया जाना आवश्यक था। सदस्य संख्या विनियमों द्वारा ही निर्धारित की जानी थी। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्नानुसार थे :—

---

1. हिन्दुस्तान रिव्यू—अप्रैल 1909 पृ० 320-336.
2. हाउस ऑफ लार्ड्स (सदन) में लार्ड मार्ले (Marley) द्वारा दिसंबर, 17, 1908 को दिया गया भाषण।
3. 1909 का भारतीय परिषद् अधिनियम 1 जनवरी 1910 से प्रभावी हुआ।

1. सर्वोच्च विधान-परिषद् या साम्राज्ञीय परिषद् :—इस अधिनियम द्वारा सर्वोच्च विधान परिषद् की सदस्य संख्या 16 से बढ़ाकर 60 कर दी गई। इस प्रकार गवर्नर-जनरल उसकी परिषद् के 6 सदस्य और दो[1] असामान्य सदस्यों को मिलाकर इस परिषद् की कुल सदस्य संख्या 69 हो गई जिनमें 37 शासकीय और 32 अशासकीय सदस्य थे। इन 32 गैर-सरकारी सदस्यों में 27 निर्वाचित तथा 5 गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत सदस्य होते थे। सर्वोच्च विधान परिषद के शासकीय, अशासकीय, निर्वाचित, मनोनीत तथा पदेन सदस्यों की संख्या का विवरण आगे दी गई सारिणी में दर्शाई गई है।

यद्यपि प्रारम्भ में ब्रिटिश भारत की सरकार ने इस परिषद् में शासकीय और अशासकीय सदस्यों की संख्या एक-समान रखने का प्रस्ताव रखा था लेकिन भारत सचिव मार्ले ने इसे उचित नहीं समझा और अशासकीय सदस्यों के बहुमत का प्रावधान रखा।

उल्लेखनीय है कि 27 निर्वाचित सदस्यों द्वारा भारत के विभिन्न निर्वाचन-मंडलों (electorates) को प्रतिनिधित्व दिया गया था जिनका ब्योरेवार विवरण इस प्रकार है :—

तेरह सामान्य निर्वाचित सदस्यों में बंगाल, मद्रास, बम्बई तथा संयुक्त प्रान्त प्रत्येक से दो सदस्य, पंजाब, बिहार, आसाम, मध्य प्रांत और वर्मा से एक-एक सदस्य सम्मिलित था।

छः वर्ग-विशेष से चुने गये सदस्यों में बंगाल, बंबई, मद्रास, संयुक्त प्रांत, मध्य-प्रांत तथा बिहार-उड़ीसा प्रत्येक से एक जमींदारों का प्रतिनिधित्व करने वाला सदस्य सम्मिलित था।

दो विशेष वर्ग के निर्वाचन मंडलों (class electorates) में एक प्रेसीडेंसियों के नगर-निगमों तथा दूसरा व्यापार मंडल (Chambers of Commerce) का प्रतिनिधित्व करता था।

छः मुस्लिम सदस्यों में दो बंगाल से तथा एक-एक सदस्य बम्बई, मद्रास, संयुक्त प्रांत तथा बिहार-उड़ीसा से चुने जाने थे।

सर्वोच्च विधान परिषद्
(Supreme Legislative Council)
(कुल सदस्य 69)

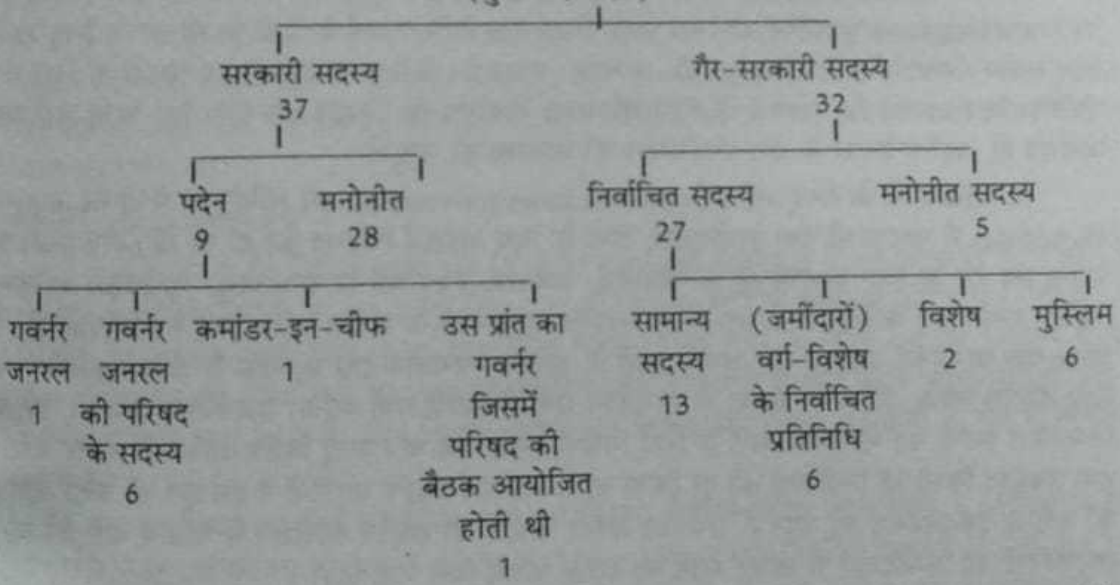

2. प्रांतीय विधान परिषदें (Provincial Legislative Councils)—इस अधिनियम द्वारा प्रांतीय विधान परिषदों की सदस्य संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि की गई जिसका विवरण नीचे दर्शाई गई सारिणी में दिया गया है :—

---

1. इन दो असाधारण सदस्यों में कमाण्डर-इन-चीफ तथा दूसरा प्रांतीय सरकार का गवर्नर शामिल था।

प्रांतीय विधान-परिषद्	पदेन सदस्यों की संख्या	मनोनीत सदस्यों की संख्या	निर्वाचित सदस्य-संख्या	विशेषज्ञ सदस्य Expert Members	कुल निर्धारित संख्या*
मद्रास	5	21	21	02	49
बंगाल	5	20	28	02	55
संयुक्त प्रांत	1	26	21	02	50
पंजाब	1	16	08	02	27
बर्मा	1	14	01	02	18
आसाम	1	13	11	01	26
बिहार-उड़ीसा	4	19	21	01	45
बंबई	5	21	21	02	49
मध्य प्रांत	1	17	07	01	26

3. भारत में अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति का प्रादुर्भाव—भारतीय परिषद् अधिनियम 1909 पारित होने के पूर्व सर्वोच्च विधान-परिषद् तथा प्रांतीय विधान परिषदों के लिए सदस्यों को मनोनीत किया जाना था। इस अधिनियम द्वारा भारत में प्रतिनिधित्व के आधार पर गवर्नर-जनरल द्वारा अधिनियमित नियमों के अनुसार विधान-परिषदों में निर्वाचन प्रणाली लागू की गई। सर्वोच्च एवं प्रांतीय परिषदों में सदस्यों के चुनाव (निर्वाचन) के लिए तीन प्रकार के निर्वाचन मंडलों (Electorates) का प्रावधान था—(1) साधारण, (2) वर्ग-विशेष तथा (3) विशेष निर्वाचन मंडल। साधारण निर्वाचन-मंडल में अशासकीय निर्वाचित सदस्यों तथा जिला-परिषदों का समावेश था। वर्ग-विशेष के निर्वाचन-मंडल में जमींदारों तथा मुसलमानों को प्रतिनिधित्व का अवसर दिया गया था जबकि विशिष्ट निर्वाचन-मंडल में प्रेसीडेंसियों के नगर-निगमों तथा व्यापार-मंडलों के सदस्य प्रतिनिधित्व करते थे।[1]

उपर्युक्त व्यवस्था से स्पष्ट है कि इस अधिनियम द्वारा ब्रिटिश सरकार ने भारत में साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन पद्धति को सुस्थापित करने का प्रयास किया तथा विभिन्न वर्गों के हितों के संरक्षण के लिए उनके लिए अलग-अलग सीटें निर्धारित कर दीं। सम्भवत: तत्कालीन ब्रिटिश शासकों ने इन सुधारों के लिए यह नीति इसलिए अपनाई कि परिषदों के लिए यथासंभव निर्वाचन का सिद्धांत अपनाया जाए परन्तु जहाँ यह असंभव हो, वहाँ मनोनयन के द्वारा प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की जाए।[2]

4. मतदाताओं के लिए अर्हताएँ (Qualifications for voters)—इस अधिनियम में दी गई अनुसूची (Schedule) में मतदाताओं तथा उम्मीदवारों, दोनों के लिए अर्हताएँ निश्चित कर दी गई थीं। तीन प्रकार के व्यक्ति मत देने के लिए अयोग्य थे :—महिलाएँ, अवयस्क (21 वर्ष से कम आयु) या विकृत मस्तिष्क व्यक्ति। उम्मीदवारों के लिए निर्योग्यताओं का उल्लेख अधिनियम के अधीन पारित किये गए विनियम IV में किया गया था जिनमें उपर्युक्त तीन अयोग्यताओं के अलावा न्यायालय द्वारा छ: मास से अधिक कारावास के लिए दण्डित व्यक्ति, शासकीय सेवक या शासकीय सेवा से हटाया गया व्यक्ति, राजनीतिक अपराधी, देश से निष्कासित व्यक्ति को भी उम्मीदवारी के लिए निर्योग्य माना गया था। परन्तु विशेष आदेश से गवर्नर जनरल द्वारा उपर्युक्त किसी भी निर्योग्यता को दूर किया जा सकता था। तथापि भारतीयों ने इस छूट की कड़ी भर्त्सना की क्योंकि इस अपवाद की ओट में सपरिषद् गवर्नर जनरल को राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग लेने वाले राष्ट्रवादियों को उम्मीदवारी से वंचित रखने का अच्छा कारण मिल गया था।[3]

---

* उपर्युक्त संख्या सन् 1912 के अधिनियम पर आधारित है तथा गवर्नर-जनरल तथा विशिष्ट सदस्यों का समावेश नहीं है।

1. गवर्नर-जनरल आवश्यकतानुसार विशिष्ट विषय पर परामर्श हेतु किसी विशिष्ट सदस्य को परिषदों में नियुक्त कर सकता था।
2. पी० मुखर्जी : इंडियन कान्स्टीट्यूशन डाक्यूमेंट्स (ग्रंथ 2) पृ० 258.
3. लाला लाजपतराय को इसी कारण परिषद् की सदस्यता के लिए चुनाव लड़ने के अवसर से वंचित रखा गया था।

5. परिषदों में सदस्यों को बजट पर बहस करने तथा जनहित के विषय पर प्रश्न प्रस्तुत करने तथा पूछने का अधिकार—सन् 1909 के अधिनियम के अन्तर्गत विधान परिषदों की शक्तियों में वृद्धि की गई अतः अब वार्षिक बजट पर विचार करने तथा प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार सदस्यों को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार परिषदों के सदस्य सार्वजनिक हितों के विषयों पर प्रस्ताव रख सकते थे तथा प्रश्न पूछ सकते थे। इसके पूर्व सन् 1892 के अधिनियम के अन्तर्गत यह अधिकार अत्यंत सीमित था। प्रस्ताव प्रस्तुत करने के पूर्व सदस्य द्वारा अध्यक्ष को 15 दिन की पूर्व-सूचना दी जाना अनिवार्य था तथा उन्हें अनुरोध के रूप में प्रस्तुत किया जाना था।

इस अधिनियम द्वारा सदस्यों को प्रश्न पूछने के अलावा उत्तर मिल जाने पर पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार भी दिया गया लेकिन यह अधिकार केवल प्रश्नकर्त्ता सदस्य को ही था, अन्य सदस्य को नहीं। ऐसे ही समानान्तर अधिकार प्रांतीय परिषदों के सदस्यों को भी दिये गए थे। अधिनियम द्वारा परिषदों की विधायी शक्तियों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया था।

6. इंग्लैंड स्थित इंडिया कौंसिल तथा भारत की गवर्नर-जनरल की कौंसिल में भारतीयों की नियुक्ति—भारतीय परिषद् अधिनियम 1909 की एक उल्लेखनीय उपलब्धि यह थी कि इसके द्वारा भारत-सचिव की परिषद् (India Council) तथा भारत के गवर्नर-जनरल की कार्यपालिका परिषद् में सर्वप्रथम भारतीय सदस्यों का समावेश किया गया। तदनुसार दो भारतीय श्री के० सी० गुप्ता तथा सैय्यद हुसैन बिलगामी[1] को इंग्लैण्ड स्थित इंडिया कौंसिल (भारत-सचिव की परिषद्) में नियुक्त किया गया। इसी प्रकार भारत सचिव (Secretary of State for India) ने बंगाल के महाधिवक्ता (Advocate General) को गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के विधि-सदस्य के पद पर नियुक्त किया। इस पर अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए मुस्लिमों ने भारत सचिव के पास एक शिष्ट-मण्डल भेजा तथा एक मुस्लिम सदस्य को भी गवर्नर-जनरल की परिषद् में नियुक्त किये जाने की माँग की लेकिन मि० मार्ले ने उनकी माँग अस्वीकार कर दी। भारत की सर्वोच्च कार्यकारिणी परिषद् में भारतीयों का समावेश निश्चित ही भारत के सांविधानिक इतिहास में एक अपूर्व उपलब्धि थी।

7. प्रांतीय कार्यकारिणी परिषदों की सदस्य-संख्या में वृद्धि—सन् 1909 के अधिनियम के अन्तर्गत न केवल सर्वोच्च कार्यकारिणी में बल्कि प्रांतों के गवर्नरों की कार्यकारिणी परिषदों की सदस्य-संख्या में वृद्धि कर उनका विस्तार किया। बंगाल, मद्रास तथा बंबई के गवर्नरों की परिषद् में अब 2 के बजाय 4 ऐसे सदस्य रखे गए जिन्होंने ब्रिटिश अधिराट् के अधीन कम-से-कम बारह वर्ष सेवा की हो।[2] गवर्नर-जनरल को यह अधिकार दिया गया कि वह ऐसे प्रांतों के लिए जिनमें लेफ्टीनेंट गवर्नर कार्य कर रहे हों, परिषद् का गठन कर सकता था।

आलोचनात्मक मूल्यांकन :

उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश सम्राट की 18 नवंबर 1908 की उद्घोषणा में सन् 1909 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रस्तावित सुधारों का पूर्व संकेत दिया गया था। इसका उद्देश्य भारत में प्रतिनिधिक-परिषदों के सिद्धांत को सतर्कतापूर्वक लागू करना था। परन्तु भारत-सचिव मार्ले ने अपने संसदीय वक्तव्य में यह स्पष्ट किया कि इस अधिनियम का लक्ष्य भारतवासियों को उत्तरदायी सरकार प्रदान करना नहीं है और न संसदीय प्रणाली लागू करना है, वरन् विधान परिषदों को केवल परामर्शदात्री संस्थाओं के रूप में विकसित करना है[3]

इस अधिनियम के दोषों को इंगित करते हुए विद्वानों ने भिन्न विचार व्यक्त किये हैं। श्री आर० सी० मजूमदार ने इस अधिनियम को चन्द्रमा की चमक (Moon Shine) मात्र निरूपित किया है जबकि जी० एन० सिंह के अनुसार इस अधिनियम के अधीन किये गए परिवर्तन पूर्णतः भ्रामक, जटिल तथा असंतोषजनक थे।[4]

---

1. सर सैयद बिलगामी तत्कालीन निजाम राज्य (हैदराबाद) के प्रमुख परामर्शदाता के रूप में कार्यरत थे।
2. अधिनियम 1909 का उपबन्ध (2) (1).
3. आयंगर० आर० एस० : इंडियन कांस्टिट्यूशनल हिस्ट्री पृ० 157.
4. जी० एन० सिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास (ग्रंथ II) पृ० 208.

पी० ई० राबर्टसन ने इन्हें ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाया गया एक मध्यम मार्ग (Middle way) निरूपित किया है।

निम्नलिखित कारणों से मिण्टो-मार्ले सुधार भारतीयों की आकांक्षाओं को संतुष्ट करने में विफल रहे—

1. इस अधिनियम द्वारा सुधार की ओट में चुनाव पद्धति में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया गया था ताकि भारतीय राष्ट्रवादियों की एकता को तोड़कर उन्हें विभिन्न गुटों में बाँट दिया जाए। यह अलगाववादी नीति केवल मुस्लिमों तक सीमित न रह कर जमींदारों, व्यापारियों, पूँजीपतियों आदि को अलग-अलग वर्गों में बाँटकर देशवासियों को विभाजित करने की नीयत से अपनाई गई थी। फलतः इससे भारतीयों में रोष व्याप्त था। यह नीति भारत के भावी राजनीतिक इतिहास के लिए अत्यंत घातक सिद्ध हुई।

2. इन सुधारों द्वारा भारत में सीमित मताधिकार व्यवस्था लागू की गई थी तथा चुनाव पद्धति केवल अप्रत्यक्ष न होकर दोहरी अप्रत्यक्ष रखी गई थी। वोट देने का अधिकार केवल उन्हीं लोगों को दिया गया था जिनकी वार्षिक आय 15,000 रुपये थी या जो 10,000 रुपये वार्षिक लगान देते थे। बंगाल में केवल वे ही व्यक्ति वोट दे सकते थे जिनके पास राजा या नवाब की उपाधि हो अतः स्पष्ट है कि मताधिकार केवल कुछ लोगों तक ही सीमित था।

इसके अतिरिक्त लोगों को अपने प्रतिनिधि चुनकर सीधे विधान परिषदों में भेजने का अधिकार नहीं था बल्कि वे अप्रत्यक्ष पद्धति से निर्वाचित होते थे, फलतः उनमें गैर-जिम्मेदारी की भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक था।[1]

3. इस अधिनियम द्वारा सर्वोच्च विधान परिषद् में अभी भी सशक्त शासकीय बहुमत कायम रखा गया था तथा गैर-सरकारी सदस्यों को अल्पमत में रखा गया था ताकि उन्हें सरकारी निर्णयों के विरुद्ध आवाज उठाने का मौका न मिले। इसी कारण ये सुधार लोकप्रिय नहीं बन सके।

केवल यही नहीं, प्रांतीय परिषदों में यद्यपि गैर-सरकारी बहुमत स्थापित किया था लेकिन वस्तुतः यह एक धोखा एवं दिखावा—मात्र था क्योंकि इन गैर-सरकारी सदस्यों में निर्वाचित सदस्यों के अलावा मनोनीत सदस्य भी होते थे, जो प्रायः सरकार का ही साथ देते थे क्योंकि उनका मनोनयन सरकार द्वारा ही किया जाता था। इसके अतिरिक्त गवर्नर जनरल तथा गवर्नरों को प्राप्त वीटो शक्ति गैर-सरकारी बहुमत को विफल करने में सक्षम थी। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी परिषद् में विधि-सदस्य के रूप में नियुक्त लार्ड सिन्हा[2] ने सन् 1917 के एक साक्षात्कार में कहा था कि "यद्यपि सन् 1909 के सुधार एक सुस्पष्ट अगला कदम था लेकिन इसने भारतीयों को विधान परिषदों में केवल प्रभाव दिया न कि शक्ति।"[3]

4. इस अधिनियम में एक अन्य दोष यह था कि इसके द्वारा न तो प्रांतीय सरकारों पर केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण को कम किया गया और न केन्द्रीय सरकार पर भारत सचिव एवं उसके परिषद् के नियन्त्रण में कोई कमी की गई थी।

5. इस अधिनियम के अधीन लागू किये गए सुधारों की आलोचना करते हुए के० वी० पुन्नैया ने कहा है कि इनसे सरकार को सरकारी सदस्यों पर नियंत्रण अधिक कड़ा करने की छूट मिली क्योंकि वे न तो कोई प्रस्ताव रख सकते थे और न प्रश्न ही पूँछ सकते थे। वे सरकारी अनुमति के बिना बहस में हस्तक्षेप भी नहीं कर सकते थे। उनका एकमात्र काम "सरकार के पक्ष में तथा गैर-सरकारी विपक्ष के विरुद्ध मतदान करना था।"

6. सर चार्ल्स (Sir Charles) की अध्यक्षता में गठित भारतीय विकेन्द्रीकरण आयोग (Indian Decentralization Commission) ने फरवरी 1909 की अपनी रिपोर्ट में यह अनुशंसा की थी कि खंड तथा जिला स्तर (at the Division and District level) पर शक्ति प्रत्यायोजन को बढ़ावा दिया जाए,

---

1. एम० पी० पायली : कांस्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इंडिया पृ० 48.
2. सन् 1909 के भारत शासन अधिनियम के अन्तर्गत लार्ड सिन्हा ऐसे प्रथम भारतीय थे जिन्हे गवर्नर-जनरल की कार्यपालिक-परिषद (Executive council) में विधि-सदस्य के पद पर नियुक्त किया था।
3. माडर्न रिव्यू (Modern Review) जुलाई 1917 पृ० 104.

स्थानीय-प्रशासनिक इकाइयों का विस्तार हो, तथा वित्तीय अवक्रमण (financial devolution) की नीति अपनाई जाए ताकि प्रांतों के प्रति होने वाले भेदभाव को रोका जा सके। आयोग ने विधान-परिषदों मे अत्यधिक केन्द्रीयकरण के दोषों की ओर भी ब्रिटिश सरकार का ध्यान आकर्षित किया परन्तु इन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया संभवत:, इसका कारण यह था उस समय सरकार के विरुद्ध बढ़ते आंदोलनों के कारण उसका अधिकांश समय क्रांतिकारियों के विरुद्ध दमनात्मक कार्यवाहियों में ही कारित हो रहा था। तथापि जब आयोग की उक्त सुझावों को सन् 1915 में चर्चा हेतु लिया गया, तब तक बहुत विलंब हो चुका था तथा अधिकांश अनुशंसाएं अप्रासंगिक और अव्यावहारिक हो चुकी थीं।

7. सन् 1909 के सांविधानिक सुधार भारत में उत्तरदायी सरकार स्थापित करने में विफल रहे। परन्तु जैसा कि पूर्व में कथन किया जा चुका है, इन सुधारों के प्रणेता मिंटो-मार्ले ने यह अधिनियम पारित होते समय ही स्पष्ट कर दिया था कि इन सुधारों का उद्देश्य भारत में उत्तरदायी सरकार स्थापित करना नहीं है। विधान परिषदों की सरकार से प्रश्न पूछने की शक्ति अत्यधिक सीमित होने के कारण वे सरकार से जानकारी प्राप्त करने के अलावा और कुछ नहीं कर सकती थीं। वास्तविक शक्ति तो अभी भी ब्रिटिश सरकार में ही केन्द्रित थी।

सन् 1909 के अधिनियम के अन्तर्गत लागू किये गए सुधारों की समीक्षा करते हुए डॉ० जकारिया ने कहा है कि "इनसे भारतीयों को एक हाथ से जो कुछ दिया गया था, उसे दूसरे हाथ से छीन लिया गया था। इस अधिनियम द्वारा प्रजातांत्रिक प्रणाली को निर्वाचन-पद्धति अपनायी गई लेकिन उसे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त लागू करके अप्रजातांत्रिक बना दिया गया। प्रांतों की विधान-परिषद् से सरकारी बहुमत को समाप्त किया गया, परन्तु गैर-सरकारी सदस्य सदैव अल्पमत में ही रहे। परिषदों में सदस्यों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि की गई लेकिन स्पष्ट शब्दों में यह नकारा गया कि भारत में संसदीय प्रणाली लागू की जा रही है।"

उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस परिवर्तित सुधार-व्यवस्था ने जनता की परेशानियों या दु:खदर्द को ब्रिटिश सरकार के सर्वोच्च शासनाधिकारियों तक पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त किया। इसके अतिरिक्त नई व्यवस्था से भारतीयों को संसदीय पद्धति से अनुभव ग्रहण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ तथा वे सरकारी प्रशासन तंत्र की समस्याओं तथा जटिलताओं से परिचित हो सके। इस सुधार-व्यवस्था ने भावी सांविधानिक सुधारों का मार्ग खोल दिया तथा इससे भारतीय राष्ट्रवादियों को अपने प्रयासों की आंशिक सफलता से भावी जन-आंदोलन के लिए प्रेरणा मिली।